E-ISSN: 2706-8927
P-ISSN: 2706-8919
www.allstudyjournal.com
IJAAS 2021; 3(1): 345-347
Received: 04-11-2020
Accepted: 07-12-2020

डॉ. विश्वासी एक्का
सहायक प्राध्यापक–हिंदी
शासकीय राजमोहिनी देवी कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अम्बिकापुर, सरगुजा, छत्तीसगढ, भारत

डॉ. प्रदीप कुमार एक्का
सहायक प्राध्यापक–समाजशास्त्र
राजीव गांधी शासकीय स्नातकोत्तर, महाविद्यालय अम्बिकापुर,सरगुजा, छत्तीसगढ, भारत

Corresponding Author:
डॉ. विश्वासी एक्का
सहायक प्राध्यापक–हिंदी
शासकीय राजमोहिनी देवी कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अम्बिकापुर, सरगुजा, छत्तीसगढ, भारत

भारत के मध्य क्षेत्र के आदिवासियों में धर्म की अवधारणा एवं पूजा विधि (छत्तीसगढ़ राज्य के बस्तर क्षेत्र के विशेष संदर्भ में)

डॉ. विश्वासी एक्का, डॉ. प्रदीप कुमार एक्का

सारांश
भारत में बड़ी संख्या में आदिवासियों की बसाहट है इन्हें मोटे तौर पर तीन भौगोलिक क्षेत्रों में बाँटा जा सकता है. पहला उत्तर पूर्वी क्षेत्र दूसरा मध्य क्षेत्र और तीसरा दक्षिण पश्चिमी क्षेत्र | मध्य क्षेत्र के अंतर्गत बस्तर में गोंड मुरिया भारिया और हल्बी आदिवासी विशेष रूप से बसी हुई है | अन्य क्षेत्र के आदिवासियों की तरह बस्तर के आदिवासियों के जीवन में भी मिथक और लोक कथाएँ बहुत महत्व रखती हैं वहीं वे उनके धार्मिक जीवन को भी संचालित करती हैं | यहाँ मुख्यतः बूढ़ा देव की पूजा की जाती है महादेव पार्वती सृष्टि के सर्जक के रूप में पूजे जाते हैं | बस्तर के लिंगोपारा नामक महाकाव्य में भी वर्णित है कि गोड़ों के मिथकीय नायक लिंगो (महादेव) के नेतृत्व में गोंड़ बस्तर आये | अन्य क्षेत्र के आदिवासियों की तरह बस्तर के आदिवासियों की पूजा विधि भी प्रकृति पर आधारित है अर्थात वे प्रकृति पूजक हैं | उनके धार्मिक जीवन और विश्वास पर सम्यक दृष्टि प्रस्तुत शोध का उद्देश्य है

मुख्यशब्दः आदिवासियों में धर्म, पूजा विधि, छत्तीसगढ़ राज्य के बस्तर क्षेत्र

प्रस्तावना
भारत में आदिवासियों की एक बड़ी संख्या बसती है, लेकिन उनकी आबादी के आंकड़े कभी प्रामाणिक रूप से उपलब्ध नहीं हो पाते इसके अपने कारण हो सकते हैं। भारतीय जनजाति की एक बड़ी संख्या मोटे तौर पर विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में विभक्त है, पहला उत्तर– पूर्वी क्षेत्र दूसरा मध्य क्षेत्र और तीसरा दक्षिण–पश्चिमी क्षेत्र, मध्य वर्ग के आदिवासी विंध्याचल, सतपुड़ा, महादेव, मैकल एवं अजंता के समीपवर्ती हिस्से हैदराबाद के जंगलों से लेकर उत्तर पश्चिम में अरावली पर्वत तक फैले हुए हैं। नर्मदा एवं गोदावरी के मध्यवर्ती प्रदेश में अधिक आदिवासी विद्यमान हैं। (भारतीय आदिवासी उनकी संस्कृतियों और समाजिक पृष्ठभूमि डॉ. ललित प्रसाद विद्यार्थी पृ. सं. 30–31)[1] केन्द्रीय वर्ग के पूर्वी भाग में गंजामजिले की सबरा, गड़वा और बोपड़ों जनजातियां, उड़ीसा के अन्य पहाड़ियों की कोठ और खड़िया, सिंहभूम तथा मानभूमि की 'हो', नागपुर के अन्य हिस्सों की संथाल, उराँव मुण्डा, बिरहोर, खाड़िया, टमरिया इत्यादि जनजातियाँ प्रमुख है। केन्द्रीय पर्वतीय प्रदेश के पश्चिमी और मध्यवर्ती भाग के प्रमुखतः कोल, गोंड़ और भील जनजातियों की घनी आबादी हैं। बैगा जनजाति प्रायः कवर्धा से मण्डला तक केन्द्रित हैं तो बस्तर में मारिया और हल्बी जनजाति विशेष रूप से बसी हुई है।

आदिवासियों के धार्मिक जीवन में मिथक और लोक कथाएं बहुत महत्व रखती हैं। ऐसा कहा जा सकता है कि मिथक लाक्षणिक रूप से उनके जीवन में अंतर्दृष्टि एवं बौद्धिक विचार का प्रतिनिधित्व करता है। जनजातियों के लिए मिथकों एवं गाथाओं का वैसा ही महत्व है जैसा हिन्दुओं के लिए पुराणों और वेदों का। ये मिथक, जनजातियों के धार्मिक मन को राह दिखाते हैं, और उनकी क्रियाओं को अनुमोदित करते हैं। (वही पृ. 171)[2]

पूरे विश्व के आदिवासी समुदाय में उनकी संस्कृति को लेकर बड़ी समानता दिखाई देती है जो अदभुत है, जैसे–सामूहिकता, निवास, खानपान, रहन–सहन, एक अपनी बोली, जीवन मूल्य और धर्म–दर्शन आदि। भारत में धर्म के संबंध में आदिवासियों की सामान्यतः तीन स्थितियां दिखाई देती हैं, एक आदिवासी वर्ग वह है जिसने हिन्दू धर्म को स्वीकार कर लिया है, दूसरा वह वर्ग है जिसने ईसाई धर्म को स्वीकार कर लिया है और तीसरा वर्ग वह है जो अपने मूल धर्म अर्थात् प्रकृति पूजा में यथावत है। इन स्थितियों के अपने कारण हैं। लम्बे समय तक हिन्दू धर्मावलम्बियों के साथ रहते हुए उन्होंने उनकी संस्कृति से कई तत्वों को ग्रहण किया। त्यौहारों में दशहरा, दीपावली, आदि के साथ उनके आराध्य राम–कृष्ण से वे परिचित हुए।

1

पहले गांव–गांव में रामलीला और भागवत कथाएं प्रचलित थीं, आदिवासियों ने देखा कि प्रभु जातियां इनके उपासक हैं और उनके त्यौहारों ने भी उन्हें आकर्षित किया और वे धीरे–धीरे उनके उपास्य देव बन गये। जब उन्हें मंदिरों में प्रवेश करने से रोका गया तो उन्होंने अपने लिए अलग मंदिर बना लिये अपने घरों में पूजा कराने, बैगा के स्थान पर पुजारी बुलाने, लगे विवाह संस्कार भी ब्राह्मण पुजारी सम्पन्न कराने लगे इस तरह हिन्दू धर्म में उनका प्रवेश हो गया।

दूसरा वर्ग जिसनें ईसाई धर्म को स्वीकार किया उसके भी अपने कारण थे ईसाई धर्म , दया और करूणा पर आधारित है। ईसाई मिशनरियों ने भारत की जनजातियों की स्थिति देखी और उनके रहवास तक पहुंच कर गांव–गांव में सेवा कार्य करने लगे, उन्हें चिकित्सा और शिक्षा देने का कार्य प्रारम्भ किया, ग्रामीण और दूरस्थ आदिवासी अंचल में उन्होंने शिक्षण संस्थाओं के साथ डिस्पेंसरी की सुविधा मुहैया कराई। ईसाई मिशनरियों की इस संवेदना और सेवा कार्य से प्रभावित होकर कुछ आदिवासी उनकी ओर आकृष्ट हुए और धीरे–धीरे ईसाई धर्म से प्रभावित होकर उसे स्वीकारने लगे। हालांकि आलोचको ने इसे ईसाई मिशनरियों द्वारा आदिवासियों का धर्म परिवर्तन कराये जाने के रूप में देखा, लेकिन अभावग्रस्त जीवन जी रहे आदिवासियों के लिए धर्म से ज्यादा भूख, गरीबी, और अपनी स्थिति बेहतर बनाने की इच्छा प्रबल साबित हुई।

आदिवासियों का तीसरा वर्ग वह है जो हिन्दू धर्म और ईसाई धर्म के सम्पर्क में नहीं आ सका वह धर्म को लेकर अपने आदिम रूप अर्थात् विशुद्ध प्रकृति पूजक के रूप में ही अपनी पहचान बनाये रख सका। लेकिन ध्यातव्य है कि जिन आदिवासियों ने हिन्दू या तो ईसाई धर्म को स्वीकार किया उन्होंने अपने पूर्वज संस्कृति की अनेकानेक विशेषताओं को अपने वर्तमान समय तक बचाये रखा जैसे त्यौहारों में वे दशहरा दिवाली, क्रिसमस, ईस्टर के साथ करमा, छेरता, नवाखाई या तो अपनी बोली, वेशभूषा, खान–पान, रीति–रिवाज, विचार–मूल्यों को बचाये रखने में सफल रहे जिसने आदिवासी समुदाय के रूप में उनकी पहचान को बरकरार रखा, अतः कहा जा सकता है कि आदिवासी मूल रूप में आज भी प्रकृति पूजक हैं।

छत्तीसगढ़ आदिवासी बाहुल्य राज्य है जहां उरांव, कंवर, गोंड, बैगा, बिरहोर, असुर, कोरवा, पंडो आदिवासी निवासरत हैं, इन सभी आदिवासियों की संस्कृति एक दूसरे से थोड़े अंतर के साथ मिलती जुलती है। बस्तर छत्तीसगढ़ राज्य का दक्षिणी भाग है जो अपने इतिहास एवं विशेषताओं के कारण अपनी अलग पहचान बनाये हुए है यहां गोंड, मारिया, भथरा, दोरला आदिवासी निवास करते हैं।

अन्य क्षेत्र के आदिवासियों की तरह बस्तर के आदिवासियों के लिए भी मिथक और लोककथाएं बहुत महत्व रखती हैं वहीं उनके धार्मिक जीवन को संचालित करते हैं। यहां मुख्यतः बड़ादेव की पूजा की जाती है। यहां महादेव, आदिदेव माने जाते हैं ये अनार्यों के देव हैं जिन्हें प्रकारान्तर में आर्यों ने पूजना प्रारम्भ किया। मोहनजोदाड़ो और हड़प्पा संस्कृति में शिव (महादेव) को पूजे जाने के संकेत मिलते हैं वहां वे पत्थर के रूप में पूजे जाते थे। आदिवासियों में पत्थर को पूजने की परम्परा रही है यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि आदिवासी पत्थर की मूर्ति बनाकर महादेव की पूजा नहीं करते थे वरन् अनगढ़ पत्थर को अपने मूल रूप में ही पूजते थे। छत्तीसगढ़ के सरगुजा जिले में एक उक्ति प्रचलित है –

''सरगुजा गाजय गूजा माटी कर देव पहार कर पूजा''
यहां भी महादेव को कई रूपों में पूजा जाता है।

सरगुजा क्षेत्र के उराँवों में वीर राजा एक मिथकीय नायक हैं, उसी के नेतृत्व में उराँव आदिवासी सिंधुघाटी से बहिर्गमन कर छत्तीसगढ़ आये। कुडुखडण्डी (उराँव का गाथा महाकाव्य) में इसका उल्लेख बार–बार हुआ है –

की नम्है पुरखर रहेचर रे
सिंधुघाटी ती इत्तियर। सरगुजा बरेचर रे .... ।
(हमारे पूर्वज सिंधु से उतरकर सरगुजा आए)

बस्तर के 'लिंगोपाटा' नामक गाथा महाकाव्य में भी वर्णित है कि गोड़ों के मिथकीय नायक लिंगो के नेतृत्व में गोड़ बस्तर आये थे। चक्रकोर (बस्तर) के छिन्दक नाग (760–1324) भी अपनी उत्पत्ति सिंधुघाटी से मानते हैं। (छत्तीसगढ़ का जनजातीय इतिहास–हीरालाल शुक्ल, पृ सं.–31)[3] गोड़ो की कथा अनुसार महादेव (शिव–लिंगों) ही सृष्टि के सर्जक हैं।

जनजातियों के धर्म में जीववाद में विश्वास एक सार्वजनिक विशेषता है। उनके लिए सभी स्थान धार्मिक है क्योंकि वे स्थान जीवात्माओं के स्थान हैं। जानवरों, पौधों, वृक्षों, तालाबों नदियों पत्थर, पहाड़ सब में जीव का निवास है। मृतक इनके अपवाद नहीं हैं क्योंकि वे आत्मा के रूप में रहते हैं या संतानों के रूप में उनकी पुनः उत्पत्ति होती है। सम्पूर्ण वातावरण चाहे गांव हो या वन जहां आदिवासी लोग निवास करते हैं जीवात्माओं से भरा होता है। संथाल, मुण्डा, हो, बिरहोर, चेंचु या जंगल में शिकार करने वाली दक्षिण भारत की जनजातियों हो, पूरा संसार जीवात्मामय है। (भारतीय आदिवासी – उनकी संस्कृति और सामाजिक पृष्ठभूमि, डॉ. ललित प्रसाद विद्यार्थी, पृ. सं. 175)[4]

बस्तर के आदिवासियों की बात की जाय तो वे भी अन्य आदिवासियों की तरह बहुदेववादी है। दैवी शक्तियों को ऐसे देवताओं में स्थान दिया गया है जो समुदाय के जीवन की घटनाओं पर प्रभाव डालती है एवं उस पर नियंत्रण करती है। बस्तर में कई देवियां हैं जो अलग–अलग ग्रामों में अलग–अलग नाम से पूजी जाती हैं जैसे – मावली, कराना कोटिन, हिंगलाजिन, गंगादाई, कोदई बूढ़ी, परदेसिन, शीतलादई, गोदनामाता, कारी तेलंगिन, घाटमुडीन, पेन्डरावडीन, सतबहिनी, झाबरदई, पुरलादई, कुकड़ा, नारिन, केशरपालिन, आमाबालिन, बंजारिन, बहुरिया, जलनीबूढ़ी, लोहराज माता आदि की आराधना की जाती है। समहनेतामी, कलमूमी, इच्छामी, वारसे, कड़ती, कोरसा, लेकाम, होड़ी, मरकाम, कवासी, बंजारी, अतरा, ताती, पोड़ियामी, आलम, कोर्राम ओयामी, मिड़ियानी, पोयामी, मुच्चामी, मड़काम, वेट्टी, पूनेम, हपका आदि। सभी देवियों को बकरा, मुर्गा, हंसा, कबूतर, भेड़ आदि की बलि दी जाती है। बस्तर में इसके अलावा पाटदेवों का भी बड़ा प्रभाव है जैसे – बड़ेपाट, पीलापाट, बाराभुजा, नरसिंहनाथ, कुडुमतुल्ला, गंगाराम, घुटाल, कोलरपाट, पाइकसरापार, उसेण्डीदेव, इंगेहुगादेव, अंक्कलकारों, रामबाड़ा, भूमिहिरिया पाट, नंगाभीमा, कुंअरपाट, खण्डापाट आदि 18 पाट माने जाते हैं यहां बिना पाटदेव के मेला नहीं होता है। (बस्तर के गोड़ जनजाति की धार्मिक अवधारणा, डॉ. किरण नरूटी, पृ. सं. – 07)[5]

बस्तर के गांवों में धार्मिक अनुष्ठान हेतु एक व्यक्ति निर्धारित होता है, आदिवासी समुदाय में उसका महत्वपूर्ण स्थान होता है, इसे गायंता कहा जाता है, कई स्थानों में गायंता को पेरमा भी कहा जाता है। गांव का गायंता आदिवासी ही होता है, धार्मिक अनुष्ठानों को संपादित किये जाने हेतु इसका विभाजन किया गया है जो इस प्रकार है–

1. भूम गायंता– यह कृषि योग्य भूमि को तैयार किये जाने से लेकर फसल पकने तक के अनुष्ठान कराता है। इसे कसेर गायंता भी कहा जाता है।
2. पेन गायंता– यह गोत्र देवता का पुजारी होता है, इसे पेन वड्डे या पेन धुरवा भी कहा जाता है।

3. सिरहा– देवताओं की मर्जी का पता लगाने वाले व्यक्ति को हल्बी में 'सिरहा' कहा जाता है। 'लेस्की' सिरहा का सहायक होता है।
4. गुनिया/पंजियार – गुनिया जादुई नुस्खे जानता है, रोगियों को चंगा करने, खोई वस्तु ढूंढने और चोरी आदि का पता लगाता है। पंजिया वह व्यक्ति होता है जो घास को नाप–नाप कर उससे तब तक प्रश्न करता जाता है जब तक उसे सही उत्तर नहीं मिल जाता। कुछ महत्वपूर्ण धार्मिक कार्य जो विभिन्न प्रकार के विध्न–बाधाओं को दूर करने के लिए किया जाता है जैसे खटला, टर्पर हियाना, कूट पश्चानना, तोरमुण्डा पूजा, चुहका पूजा आदि। भीमा देव वर्षा कराते हैं। भीमादेव को बस्तर भूमि का खेतिहर देव माना जाता है।

मावली माता

बस्तर के आदिवासी साधारणतया पृथ्वी माता, ग्राम माता और कुल देवी की पूजा करते हैं। मावली माता को गोंड आदिवासी मातृदेवी के रूप में पूजते हैं। एक बहु प्रचलित मान्यता के अनुसार मावली माता बस्तर की दंतेश्वरी देवी की बुआ हैं, इसलिए वे दंतेश्वरी देवी से भी बड़ी हैं। मावली माता की प्रतिमा एक झूले के रूप में बनाई जाती है जिसे 'माता झूला' कहा जाता है। इस झूले में सबसे उपर दो शेरों की आकृति बनी होती है, उसके नीचे मावली माता की प्रतिमा को झूला झूलती हुई मुद्रा में बनाया जाता है, इसी झूले के नीचे सहायक माता की प्रतिमा होती है। (भारत के आदिवासी–मधूसूदन त्रिपाठी, आमेगा पब्लिकेशन, दिल्ली, पृ.सं.–122)[6] बस्तर में जलपरियों की पूजा भी प्राचीन काल से प्रचलित है। "आदिम जातियों के देवी–देवता और प्रेतात्माएं इस प्रकार कल्पित हैं कि सब महत्वपूर्ण विधियों में वे मानवीय रूप से समान है ,उनका आकार–प्रकार मानवीय आत्मा के समान हैं। कुछ देवी–देवता के बारे में धारणा है कि वे मनुष्य की प्रतिमूर्ति और कुछ देव प्रतिपादित हो सकते हैं। आदिमजातीय देवताओं की शक्ति इस पर निर्भर है कि वे स्वभाव में मनुष्य से भिन्न हैं और इस भिन्नता के आधार पर उनकी धार्मिक सेवा की जाती है। (हैरी ऐल शेपीरो 1986 मानव संस्कृति और समाज म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल पृ. क्र. 314)[7]

बड़ा देव

भारत के अन्य आदिवासियों की तरह बस्तर का आदिवासी समुदाय भी देव संस्कृति से अनुप्राणित है। आदिवासियों के देवों का प्रमुख, बड़ादेव हैं वहीं सृष्टि के रचियता हैं। बड़ा देव देवों का देव हैं, यह निराकार एवं अजन्मा है, यह मूल शक्ति है तथा तत्वों का उत्पतिकर्ता है। उसका साक्षात्कार देवों से होता है, वह कण–कण में विराजमान है। गोड़ आदिवासी समाज गोड़ी बोली में बड़ादेव को 'सल्ले–गागरा' के नाम से स्तुति करता है, जिसके धनात्मक एवं ऋणात्मक शक्ति के जागृत होने के कारण सृष्टि का निर्माण हुआ तथा इसी शक्ति के कारण ही सृष्टि के ग्रह नक्षत्रों का संचालन होता है। सल्ले–गागरा की की शक्ति समस्त जड़–चेतन में विद्यमान है। सल्ले–गागरा शक्ति ही नर – मादा शक्ति है अर्थात् उत्पत्ति की शक्ति ही सल्ले–गागरा अर्थात् बड़ादेव हैं एवं वही तथा आदि एवं अंत का घोतक है।

गोंड़ आदिवासियों की परम्परा में बूढ़ादेव कुल/कुनबा का देव है। परम्परानुसार बूढ़ादेव को प्रतीक के रूप में साजा वृक्ष के मूल में स्थापित किया जाता है।

इस प्रकार बस्तर सहित संपूर्ण देश–देशांतर के आदिवासियों में प्रचलित धार्मिक विश्वासों में प्रकृति के दर्शन होते हैं जो अपने आप में जीववाद से लेकर बहुदेववाद तक को सम्मिलित करती है। मिथक एवं गाथाएं उन्हें समृद्ध करती हैं। आदिवासी सभी प्रकार की जीवात्माओं की चाहे वे हितकारी हों या अहितकारी ,जड़ हो या चेतन, पूजा करते हैं। इन्होंने किसी प्रतिमा को नहीं बल्कि पंचतत्व को पूजनीय माना है, हिंदू धर्मावलम्बी (सनातन धर्म) उनके निकट पड़ोसी रहे हैं इसलिए आदान–प्रदान की प्रक्रिया के तहत् इन्होने उनकी संस्कृति से, धर्म से जो संस्कृति का ही एक अंग है और अन्य सांस्कृतिक तत्वों से प्रभावित हुए, वहीं हिंदू धर्मावलम्बियों ने भी जनजातीय संस्कृति से प्रभावित होकर उनके सांस्कृतिक तत्वों को ग्रहण किया, आदान–प्रदान की यह प्रक्रिया बहुत प्राचीन है और आज भी वह निरंतर है। आदिवासियों का स्वधर्म हिंदू या तो अन्य किसी भी धर्म से सर्वथा भिन्न है। परिवर्तन और परसंस्कृतिग्रहण के हर दौर में आदिवासी समुदाय, अपनी सांस्कृतिक विशेषता और स्वधर्म की रक्षा करते हुए प्रकृतिपूजक समुदाय के रूप में अपनी अलग पहचान बनाये रख पाने में सक्षम रहा हैं, अपनी अलग पहचान के लिए उसे भविष्य में भी अपनी समुत्थान शक्ति को बनाये रखना होगा।

संदर्भ सूची

1. भारतीय आदिवासी उनकी संस्कृतियों और समाजिक पृष्ठभूमि – डॉ. ललित प्रसाद विद्यार्थी पृ. सं. 30–31
2. वही पृ. 171
3. छत्तीसगढ़ का जनजातीय इतिहास–हीरालाल शुक्ल, पृ सं. –31
4. भारतीय आदिवासीः उनकी संस्कृति और सामाजिक पृष्ठभूमि – डॉ. ललित प्रसाद विद्यार्थी, पृ. सं. 175
5. बस्तर के गोड़ जनजाति की धार्मिक अवधारणा– डॉ. किरण नरूटी, पृ. सं. – 07
6. भारत के आदिवासी–मधूसूदन त्रिपाठी, आमेगा पब्लिकेशन, दिल्ली, पृ.सं.–122
7. हैरी ऐल शेपीरो 1986 मानव संस्कृति और समाज – म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल पृ. सं. 314